REG. NO. RAJHIN /2002/14707

# चोखी खेती

उत्तमा वृत्तिस्तु कृषिकर्मैव

जून, 2026

# भारतीय डेयरी उद्योग में वैज्ञानिक प्रगतिः दूध और डेयरी उत्पादों की गुणवत्ता

उमेश कुमार[1] और डॉ. चंद्रभान[2]

दूध प्राचीन काल से ही मानव आहार और पोषण का अभिन्न अंग रहा है। विश्वभर में अरबों लोग प्रतिदिन दूध और दुग्ध उत्पादों का सेवन करते हैं। दूध और दुग्ध उत्पादों को उच्च जैविक मूल्य वाला संपूर्ण आहार माना जाता है। दूध और दुग्ध उत्पाद पोषक तत्वों से भरपूर खाद्य पदार्थ हैं जो संतुलित आहार के लिए आवश्यक हैं। दूध और डेयरी उत्पाद केवल ऊर्जा के स्रोत नहीं हैं, बल्कि इसमें विभिन्न जैव–सक्रिय पोषक तत्व मौजूद होते हैं, जो शारीरिक क्रियाओं के संरक्षण और संतुलन में सहायक होते हैं। इनमें प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, खनिज और विटामिन जैसे पोषक तत्व भी पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं। ये पोषक तत्व शरीर की वृद्धि और रोग प्रतिरोधक क्षमता में योगदान करते हैं। उदाहरण के लिए, कैल्शियम हड्डियों को मजबूत बनाता है, प्रोटीन मांसपेशियों और ऊतकों की मरम्मत में सहायक होता है, और विटामिन शरीर की सामान्य क्रियाओं के लिए आवश्यक हैं। प्रोबायोटिक उत्पाद आंतरिक स्वास्थ्य को बेहतर बनाए रखते हैं और पाचन प्रक्रिया में सुधार करते हैं। इस प्रकार, दूध और डेयरी उत्पाद का योगदान केवल पोषण तक सीमित नहीं है, बल्कि यह स्वस्थ जीवनशैली और रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में भी सहायक है।

भारत में दूध और डेयरी उत्पाद शाकाहारी आहार का एक महत्वपूर्ण घटक हैं। दुग्ध उत्पादों को आहार में शामिल करने से शाकाहारी आहार में विविधता आती है। उपभोक्ता इन्हें न केवल उनके उच्च पोषण मूल्य के कारण पसंद करते हैं, बल्कि उनके स्वास्थ्य लाभ और वांछनीय इंद्रिय गुणों जैसे स्वाद, सुगंध और बनावट के कारण भी व्यापक रूप से अपनाते हैं। दूध और दुग्ध उत्पाद न केवल लोगों के लिए पोषण का एक महत्वपूर्ण स्रोत हैं, बल्कि ये किसानों, प्रसंस्करणकर्ताओं, दुकानदारों और डेयरी मूल्य श्रृंखला के अन्य हितधारकों के लिए आजीविका के अवसर भी प्रदान करते हैं।

पौष्टिक भोजन स्वास्थ्य में सुधार लाने, रोगों की रोकथाम करने और व्यक्ति के स्वस्थ जीवनशैली को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। पोषण, चिकित्सा और खाद्य विज्ञान में वैज्ञानिक प्रगति का हमारे पोषण संबंधी दृष्टिकोण पर गहरा प्रभाव पड़ रहा है। पोषण का व्यक्ति के स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों के बारे में उपभोक्ताओं में जागरूकता बढ़ रही है। इस बदलाव ने उपभोक्ताओं के खाद्य चयन में एक स्पष्ट परिवर्तन किया है। आज

1. पीएचडी स्कॉलर, राष्ट्रीय डेयरी अनुसंधान संस्थान, करनाल 2. सह–प्राध्यापक (बागवानी), कृषि महाविद्यालय, हनुमानगढ़

उपभोक्ताओं में पोषण और स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता बढ़ने के कारण डेयरी उत्पादों की मांग में भी बदलाव आया है। अब उपभोक्ता ऐसे खाद्य पदार्थों को प्राथमिकता देने लगे हैं जो केवल पोषण प्रदान नहीं करते, बल्कि स्वास्थ्य के लिए अतिरिक्त लाभ भी प्रदान करते हैं। इसका मुख्य उद्देश्य स्वस्थ जीवनशैली बनाए रखना और संतुलित आहार सुनिश्चित करना है। साथ ही, संचार माध्यमों द्वारा स्वस्थ जीवनशैली के निरंतर प्रचार ने क्रियात्मक खाद्य पदार्थों की लोकप्रियता में वृद्धि की है। इसी कारण, डेयरी उद्योग ने अपने उत्पादों को स्वास्थ्यवर्धक बनाने और पोषण मूल्य बढ़ाने के लिए विभिन्न प्राकृतिक और जैव–सक्रिय यौगिकों का समावेश शुरू किया है। यह परिवर्तन केवल उपभोक्ताओं तक सीमित नहीं है, बल्कि किसानों और डेयरी उद्योग को भी लाभ पहुँचा रहा है। दूध संग्रहण, प्रसंस्करण और विपणन की बेहतर प्रणाली ने किसानों को उचित मूल्य दिलाने में मदद की है। साथ ही, ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के नए अवसर भी उत्पन्न हुए हैं। सहकारी समितियों और निजी डेयरी इकाइयों ने मिलकर दूध उत्पादन, प्रसंस्करण और वितरण की व्यवस्था को मजबूत किया है, जिससे उपभोक्ताओं तक ताजगी और उच्च गुणवत्ता वाले उत्पाद पहुँच रहे हैं।

दूध और डेयरी उत्पादों के पोषण और स्वास्थ्य महत्व को ध्यान में रखते हुए, भारतीय डेयरी प्रसंस्करण क्षेत्र ने हाल के वर्षों में उल्लेखनीय प्रगति की है। इस प्रगति ने डेयरी उद्योग में दूध और डेयरी उत्पादों की गुणवत्ता बनाए रखने और उसके पोषण मूल्य को सुरक्षित रखने के लिए नई विधियों का विकास किया है। इनमें झिल्ली आधारित पृथक्करण तकनीकें जैसे अल्ट्रा–निस्यंदन और सूक्ष्म–निस्यंदन इत्यादि शामिल हैं। इन तकनीकों से दूध और व्हे से उपयोगी घटकों को अलग किया जा सकता है और उच्च गुणवत्ता वाले उत्पाद तैयार किए जा सकते हैं। इस प्रक्रिया से पोषक तत्वों का संरक्षण होता है और प्रसंस्करण दक्षता में भी सुधार आता है।

साथ ही, आधुनिक डेयरी प्रसंस्करण में प्रोबायोटिक उत्पादों की भूमिका भी महत्वपूर्ण है। प्रोबायोटिक्स लाभकारी सूक्ष्मजीव हैं, जो उपयुक्त मात्रा में सेवन करने पर मानव स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव डालते हैं। ये पाचन स्वास्थ्य को बेहतर बनाए रखते हैं, आंतों की सूक्ष्मजीव संतुलन को बनाए रखते हैं और प्रतिरक्षा प्रणाली को सुदृढ़ करते हैं। इस दिशा में दही और योगर्ट जैसे किण्वित डेयरी उत्पाद प्रमुख स्रोत माने जाते हैं। दही और योगर्ट पारंपरिक किण्वित डेयरी उत्पाद हैं, जिन्हें चयनित जीवाणुओं द्वारा दूध के किण्वन से प्राप्त किया जाता है। ये उत्पाद उच्च पोषण मूल्य, उत्तम पाच्यता और स्वास्थ्यवर्धक गुणों के लिए जाने जाते हैं। आजकल इन्हें और अधिक स्वास्थ्यवर्धक बनाने के लिए विभिन्न पौध–आधारित अर्कों के साथ समृद्ध किया जा रहा है। उदाहरण के लिए हल्दी, काली गाजर रंगीन शिमला मिर्च, ब्लू बेरी, जामुन और स्ट्रॉबेरी इत्यादि फल एवं सब्जिओं के अर्क को दही या योगर्ट में मिलाकर पॉलीफेनॉल्स, फ्लावोनोइड्स और अन्य जैव–सक्रिय यौगिकों की मात्रा बढ़ाई जा सकती है। इससे स्वास्थ्य लाभ बढ़ते हैं और उत्पाद का रंग, स्वाद और सुगंध भी बेहतर होता है, जिससे उपभोक्ता की डेयरी उत्पाद के लिए स्वीकृति बढ़ती है।

डेयरी उद्योग ने पर्यावरण संरक्षण और संसाधनों के कुशल उपयोग की दिशा में भी कदम बढ़ाए हैं। जल संरक्षण, ऊर्जा दक्षता और अपशिष्ट प्रबंधन के माध्यम से उद्योग अधिक टिकाऊ बनने की ओर अग्रसर है। इससे उत्पादन लागत में कमी आती है और पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव कम होता है। साथ ही, प्रसंस्करण तकनीकों में सुधार से उत्पाद की गुणवत्ता और उसकी शेल्फ लाइफ बढ़ाई जा रही है, जिससे उपभोक्ताओं तक उच्च गुणवत्ता वाले डेयरी उत्पाद पहुँच रहे हैं।

# राजस्थान हेतु उपयुक्त बाजरे की उन्नत तथा संकर किस्में

अमन[1], कपिल बिश्नोई[1], रूचिका[1] और सुजीत कुमार यादव[2]

राजस्थान में बाजरा केवल एक अनाज नहीं बल्कि शुष्क कृषि, पशुपालन और ग्रामीण खाद्य सुरक्षा का मुख्य आधार है। राज्य के शुष्क एवं अर्धशुष्क भागों में, विशेषकर पश्चिमी राजस्थान में यह फसल कम वर्षा, कम उपजाऊ भूमि और उच्च तापमान जैसी प्रतिकूल परिस्थितियों में भी उत्कृष्ट उत्पादन देने की क्षमता रखती है। यही कारण है कि बीकानेर, बाड़मेर, जैसलमेर, जोधपुर, चूरू, नागौर तथा आसपास के क्षेत्रों में बाजरा खरीफ ऋतु में किसानों की पारंपरिक और व्यावहारिक पसंद बना हुआ है। पश्चिमी राजस्थान में वर्षा प्रायः 250 मिमी से भी कम रहती है, इसलिए यहाँ ऐसी किस्मों की आवश्यकता होती है जो शीघ्र पकने वाली, सूखा सहनशील, रोग प्रतिरोधी तथा दाना और चारे (कड़बी) दोनों के लिए उपयोगी हों। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (भा.कृ.अ.प.), अंतर्राष्ट्रीय अर्द्ध–शुष्क उष्णकटिबंधीय फसल अनुसंधान संस्थान (इक्रीसैट) और अखिल भारतीय समन्वित बाजरा सुधार परियोजना ने $ए_1$ क्षेत्र (विशेष रूप से राजस्थान, गुजरात और हरियाणा के 400 मिमी से कम वर्षा वाले भाग) के लिए अनेक उन्नत और संकर किस्में विकसित की हैं।

**पश्चिमी राजस्थान में बाजरे का महत्व**

पश्चिमी राजस्थान की कृषि मुख्यतः वर्षा–आधारित (बारानी) है और यहाँ की अधिकांश भूमि बलुई, हल्की तथा कम उपजाऊ होती है। ऐसी परिस्थितियों में बाजरा अन्य अनाजों की तुलना में सबसे अधिक अनुकूल सिद्ध होता है। बाजरे का दाना मानव आहार के रूप में तथा इसका अवशेष पशुओं के लिए उत्कृष्ट चारे के रूप में प्रयुक्त होता है इसलिए यह फसल–पशुधन आधारित कृषि प्रणाली का अभिन्न अंग है। पोषण की दृष्टि से भी बाजरा अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसमें प्रचुर मात्रा में ऊर्जा, प्रोटीन, आहार रेशा (आहारीय रेशे), लौह (आयरन) तथा जस्ता (जिंक) जैसे पोषक तत्व पाए जाते हैं। वर्तमान समय में भारत सरकार द्वारा 'श्री अन्न' (मोटे अनाज) को दिए जा रहे प्रोत्साहन और वैश्विक स्तर पर पोषण–सुरक्षा के बढ़ते महत्व के कारण बाजरे की मांग में भारी वृद्धि हुई है, जिससे किसानों के लिए इसकी आर्थिक उपयोगिता भी काफी बढ़ गई है।

**किस्म चयन का आधार**

पश्चिमी राजस्थान के लिए बाजरे की किस्म चुनते समय कुछ प्रमुख बातों का ध्यान रखना चाहिए:

१. स्थिरताः किस्म कम वर्षा और नमी के अभाव की दशा में भी स्थिर उत्पादन देने वाली हो।

२. रोग प्रतिरोधः उसमें मृदुरोमिल आसिता (जोगिया/हरित बाली रोग), झुलसा (ब्लास्ट), कंडुआ (स्मट) और चेपा (एरगॉट) जैसे प्रमुख रोगों के प्रति सहनशीलता या प्रतिरोधक क्षमता हो।

३. पकने की अवधिः किस्म के पकने का समय स्थानीय वर्षा–स्थिति के अनुरूप हो।

४. दोहरा उद्देश्यः उसमें दाने के साथ–साथ अच्छा चारा उत्पादन भी हो।

**प्रमुख उन्नत और संकर किस्में**

नीचे दी गई सारणी में राजस्थान, विशेषकर पश्चिमी राजस्थान के लिए उपयोगी प्रमुख बाजरा उन्नत एवं संकर किस्मों का संक्षिप्त विवरण दिया गया है:

**विशेष आकर्षणः विश्व की पहली 'त्रि–मार्गीय' बाजरा संकर किस्म – आरएचबी 273**

4 जनवरी 2026 को केंद्रीय कृषि एवं किसान कल्याण मंत्री श्री शिवराज सिंह चौहान द्वारा विमोचित आरएचबी 273 दुनिया

1. आनुवंशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग, स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर 2. [2]प्रोफेसर, आनुवंशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग, स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर Email: sujit3773@gmail.com

| किस्म | प्रकार | अधिसूचना वर्ष | उपयुक्त क्षेत्र | प्रमुख विशेषताएँ |
|---|---|---|---|---|
| राज 171 | उन्नत/ संकुल | 1992 | सम्पूर्ण भारत | 82-85 दिनों की परिपक्वता अवधि , लंबे बेलनाकार घने सिट्टे, धूसर–भूरे दाने, डाउनी मिल्ड्यू प्रतिरोधी, लोकप्रिय संकुल किस्म |
| आरएचबी 154 | संकर | 2009 | 400 मिमी से कम वर्षा वाले क्षेत्र, पश्चिमी राजस्थान | जल्दी पकने वाली , स खा सहनशील, मृदुरोमिल आसिता (जोगिया) रोग प्रतिरोधी |
| एचएचबी 216 | संकर | 2010 | पश्चिमी राजस्थान, गुजरात तथा हरियाणा के शुष्क भाग | मध्यम परिपक्वता, मृदुरोमिल आसिता रोग प्रतिरोधी, भूरे रंग के लंबे ब्रिस्टल |
| एचएचबी 223 | संकर | 2010 | राजस्थान, गुजरात तथा हरियाणा | मध्यम परिपक्वन अवधि, मृदुरोमिल आसिता रोग प्रतिरोधी, सूखा सहनशील |
| एमबीसी 2 | उन्नत/ संकुल | 2011 | राजस्थान, गुजरात तथा हरियाणा | मध्यम ऊँचाई, मध्यम लंबाई के अर्ध–घने बेलनाकार सिट्टे, धूसर बीज |
| आरएचबी-173 | संकर | 2011 | राजस्थान, गुजरात तथा हरियाणा | मध्यम परिपक्वन अवधि, मृदुरोमिल आसिता रोग प्रतिरोधी |
| आरएचबी-177 | संकर | 2011 | पश्चिमी राजस्थान, गुजरात तथा हरियाणा के शुष्क भाग | जल्दी पकने वाली, जोगिया रोग प्रतिरोधी, शूकयुक्त (रोयेंदार) सिट्टे |
| एचएचबी -226 | संकर | 2011 | पश्चिमी राजस्थान, गुजरात तथा हरियाणा के शुष्क भाग | मध्यम परिपक्वन अवधि, जोगिया रोग प्रतिरोधी, गहरी हरी पत्तियाँ, शूकयुक्त सिट्टे |
| एचएचबी 234 | संकर | 2013 | पश्चिमी राजस्थान, गुजरात तथा हरियाणा के शुष्क भाग | शीघ्र पकने वाली, मृदुरोमिल आसिता रोग सहनशील, छोटे शूक (छोटे रोएँ) युक्त सिट्टे |
| एमपीएमएच 17 | संकर | 2013 | राजस्थान, गुजरात तथा हरियाणा | मध्यम परिपक्वन अवधि, सघन (गठी हुई) शूकयुक्त सिट्टे, धूसर–भूरे बीज |
| जीएचबी -905 | संकर | 2013 | राजस्थान, गुजरात तथा हरियाणा | मध्यम परिपक्वन अवधि, सघन बेलनाकार शूकयुक्त सिट्टे, मृदुरोमिल आसिता रोग प्रतिरोधी, धूसर–भूरे दानें |
| धनशक्ति | उन्नत/ बायोफोर्टिफाइड | 2014 | महाराष्ट्र, कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, राजस्थान, हरियाणा, मध्य प्रदेश, गुजरात, उत्तर प्रदेश, पंजाब | शीघ्र परिपक्वन, उच्च लोहा (36–91 पीपीएम) और जिंक (39–48 पीपीएम) मोटे, गोलाकार, चमकदार स्लेट–धूसर बीज |
| एमपीएमएच 21 | संकर | 2016 | राजस्थान, गुजरात तथा हरियाणा | शीघ्र परिपक्वन, मृदुरोमिल आसिता, झुलसा (ब्लास्ट), कंडुआ (स्मट) रोग प्रतिरोधी, धूसर–भूरे षट्भुजाकार दानें |
| बीएचबी 1202 | संकर | 2018 | राजस्थान | शीघ्र परिपक्वन, मृदुरोमिल आसिता , झुलसा (ब्लास्ट) रोग प्रतिरोधी, घना शंक्वाकार पैनिकल/ सिट्टे, पीला–भूरा गोलाकार दाने, प्रमुख कीटों के प्रति अत्यधिक प्रतिरोधी |
| आरएचबी 223 | संकर | 2018 | राजस्थान, गुजरात तथा हरियाणा | शीघ्र परिपक्वन, मृदुरोमिल आसिता, झुलसा (ब्लास्ट), कंडुआ (स्मट) रोग, शूट फ्लाई, स्टेम बोरर और ग्रे वीवल के प्रति प्रतिरोधी, तनावपूर्ण वातावरण के प्रति सहनशील लंबे भूरे शूकयुक्त सिट्टे |
| बीएचबी 1602 | संकर | 2020 | राजस्थान, गुजरात तथा हरियाणा | शीघ्र परिपक्वन, घना शंक्वाकार पैनिकल/ सिट्टे, धूसर–भूरे, गोलाकार दाने, डाउनी मिल्ड्यू, ब्लास्ट, स्मट और कीटों के प्रति प्रतिरोधी |
| एमपीएमएच 35 | संकर | 2022 | पश्चिमी राजस्थान, गुजरात तथा हरियाणा के शुष्क भाग | शीघ्र परिपक्वन, डाउनी मिल्ड्यू, ब्लास्ट, स्मट और कीटों के प्रति प्रतिरोधी, धूसर–भूरे दाने |
| एमपीएमएच 42 | संकर | 2024 | राजस्थान, गुजरात तथा हरियाणा के शुष्क भाग | शीघ्र परिपक्वन, शंक्वाकार पैनिकल/ सिट्टे, धूसर गोलाकार बीज, डाउनी मिल्ड्यू, ब्लास्ट और अन्य पर्ण रोगों के प्रति अत्यधिक प्रतिरोधी, सूखा प्रतिरोधी |

की पहली ''त्रि–मार्गीय संकर'' किस्म है। इसे अंतर्राष्ट्रीय अर्ध–शुष्क उष्णकटिबंधीय फसल अनुसंधान संस्थान (इक्रीसैट) और भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (भा.कृ.अ.प.) ने राजस्थान कृषि अनुसंधान संस्थान के साथ मिलकर विकसित किया है।

**पारंपरिक किस्मों से कैसे अलग है 'त्रि–मार्गीय' संकर?**

पारंपरिक संकर किस्मों में केवल दो जनक पंक्तियों (पैतृक लाइनों) का उपयोग होता है, जबकि एक 'त्रि–मार्गीय' संकर में तीन जनक पंक्तियों का संयोजन किया जाता है। इससे इस किस्म में जैविक और अजैविक तनाव (जैसे बीमारियाँ और भयंकर सूखा) को सहने की व्यापक अनुकूलन क्षमता और आघात–सहन क्षमता (बफरिंग कैपेसिटी) बहुत अधिक बढ़ जाती है।

**आरएचबी 273 की खेती हेतु मुख्य विशेषताएँ एवं लाभः**

- **उत्कृष्ट पैदावारः** 2022 से 2024 के बीच 3 राज्यों के 30 अलग–अलग स्थानों पर हुए सघन परीक्षणों में इस किस्म ने औसतन 2,230 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर (22.3 क्विंटल/हेक्टेयर) दाना उपज दर्ज की है। यह क्षेत्रीय किस्मों की तुलना में 13 से 27 प्रतिशत अधिक उपज देती है। विशेष रूप से, यह लोकप्रिय किस्म 'एचएचबी 67 उन्नत' की तुलना में लगभग 28 प्रतिशत अधिक पैदावार देती है।
- **उपयुक्त क्षेत्रः** यह $ए_1$ बारानी क्षेत्र (राजस्थान, गुजरात और हरियाणा के शुष्क क्षेत्रों) के लिए अनुशंसित है, जहाँ वार्षिक वर्षा 400 मिमी से कम होती है।
- **द्विउद्देश्यीय लाभः** यह न केवल बम्पर दाना उपज देती है, बल्कि पशुओं के लिए अत्यधिक पौष्टिक और प्रचुर मात्रा में सूखा चारा भी प्रदान करती है, जो चारा संकट वाले क्षेत्रों के लिए वरदान है।
- **रोग और पक्षियों से सुरक्षाः** यह किस्म मृदुरोमिल आसिता (जोगिया), झुलसा और कंडुआ जैसी गंभीर बीमारियों के प्रति अत्यधिक प्रतिरोधी है। साथ ही, इसकी सिट्टों पर मौजूद शूक (रोएँ) इसे पक्षियों द्वारा चुगकर किए जाने वाले नुकसान से बचाते हैं।
- **जलवायु अनुकूलनः** वैज्ञानिकों के अनुसार, यह किस्म उच्च तापमान और पानी की भारी कमी को आसानी से झेल सकती है, जिससे यह छोटे किसानों की खाद्य, पोषण और चारा सुरक्षा सुनिश्चित करती है।

**पश्चिमी राजस्थान के लिए उपयुक्त किस्में एवं खेती के सुझाव**

**विशेष किस्मेंः** पश्चिमी राजस्थान के अत्यधिक शुष्क भागों के लिए आरएचबी 154, आरएचबी 177, एचएचबी 234, एमपीएमएच 21, बीएचबी 1602, एमपीएमएच 42 और नवीनतम आरएचबी 273 सबसे बेहतर विकल्प हैं। जहाँ वर्षा अनिश्चित होती है, वहाँ किसान आरएचबी 273 जैसी किस्में चुन सकते हैं जो दाने के साथ–साथ पशुओं के लिए भरपूर चारा भी सुनिश्चित करती हैं।

**खेती के लिए सुझावः**

- **बुवाईः** बुवाई मानसून की प्रथम प्रभावी वर्षा के तुरंत बाद करनी चाहिए ताकि बीज अंकुरण के लिए मिट्टी में पर्याप्त नमी बनी रहे।
- **बीज और उपचारः** हमेशा प्रमाणित बीजों का ही उपयोग करें और मृदा जनित एवं बीज जनित रोगों से बचने के लिए बीजोपचार अवश्य करें।
- **फसल प्रबंधनः** उचित पंक्ति–दूरी, मृदा परीक्षण के आधार पर संतुलित उर्वरकों का उपयोग और समय पर खरपतवार नियंत्रण, संकर किस्मों (विशेषकर आरएचबी 273) की पूर्ण उत्पादन क्षमता प्राप्त करने के लिए अत्यंत आवश्यक है।

**निष्कर्ष**

राजस्थान, विशेषकर पश्चिमी राजस्थान में, बाजरे की उन्नत और संकर किस्में सूखा–प्रवण कृषि के लिए संजीवनी सिद्ध हुई हैं। भविष्य में जलवायु परिवर्तन की गंभीर चुनौतियों को देखते हुए आरएचबी 273 जैसी 'त्रि–मार्गीय' संकर किस्मों का महत्व बहुत अधिक बढ़ जाएगा, जो कम पानी में बेहतरीन दाना, पौष्टिक चारा और मजबूत रोग प्रतिरोध प्रदान करती हैं। सही किस्म का चयन, संस्थागत वैज्ञानिक सहयोग और उन्नत कृषि प्रबंधन ही मरुस्थलीय क्षेत्रों में बाजरा उत्पादन और किसानों की आय बढ़ाने की मूल कुंजी है।

# डिग्गी निर्माण से कृषि को मजबूत करें किसान

डॉ. सीमा त्यागी[1] एवं हीरालाल बुनकर[2]

भारत की अर्थव्यवस्था का एक बड़ा हिस्सा ग्रामीण क्षेत्रों पर आधारित है। ग्रामीण विकास तभी संभव है जब वहाँ पानी ,कृषि, सिचाई, रोजगार और बुनियादी सुविधाएँ उपलब्ध हो। ऐसे में डिग्गी एक परम्परागत लेकिन अत्यंत प्रभावी जल प्रबंधन तकनीक ग्रामीण विकास का मजबूत आधार बनकर उभरती है ।

**डिग्गी क्या है?**

डिग्गी ग्रामीण क्षेत्रों में बनाई जाने वाली एक बड़ी, गहरी और पक्की बनी पानी भण्डारण संरचना है। यह वर्षा, जल, नहरों के पानी को संग्रहित करती है। राजस्थान, हरियाणा, मध्यप्रदेश और गुजरात जैसे राज्यों में डिग्गी प्रचलन में है और खेती का स्थायी आधार देती है।

**डिग्गी का महत्व**

**1. सिचाई में सहायक** : डिग्गी में संरक्षित पानी जरूरत पड़ने पर फसलों में सिचाई के लिए उपयोग किया जाता है। इससे कृषि उत्पादन में वृद्धि होती है।

**2. वर्षा जल संचयन** : जहाँ वर्षा कम होती है, वहाँ डिग्गी पानी बचाने का सबसे उपयुक्त तरीका है। यह बरसाती पानी को व्यर्थ बहने से रोकती है।

**3. भू–जल स्तर बढ़ाने में मदद** : डिग्गी के आस दृपास जमीन में नमी बनी रहती है, जिससे भू–जल पुनर्भरण होता है और कुओं , ट्यूबवेल का जल स्तर गिरने से बचता है।

**4. पशुपालन में उपयोगी** : ग्रामीण क्षेत्रों में पशुओं के लिए पीने का पानी उपलब्ध कराना बडी चुनौती है। डिग्गी इस समस्या को हल करती है।

**5. लागत से कमी** : जहां डिग्गी होती है वहाँ किसान को बार–बार ट्यूबवेल चलाने की जरूरत नहीं पड़ती जिससे बिजली और डीजल की बचत होती है।

**6. रोजगार को बढ़ावा** : डिग्गी निर्माण से स्थानीय लोगों को रोजगार मिलाता है और दीर्घकाल में कृषि और पशुपालन से आय बढ़ती है।

**निर्माण व मंजूरी से जुड़ी सावधानियां**

**1 पूर्व–स्वीकृति अनिवार्य** : डिग्गी की खुदाई या निर्माण कृषि विभाग से प्रशासनिक स्वीकृति (Administrative Approval) मिलने के बाद ही शुरू करें। पहले से बनी हुई डिग्गी पर अनुदान नहीं मिलता।

– **मापदंड का ध्यान** : डिग्गी की भराव क्षमता निर्धारित क्षमता के अनुसार (कम से कम 4 लाख लीटर पानी) होनी चाहिए।

– जल स्त्रोत : आपके पास सिंचाई का स्थायी स्त्रोत (जैसे नहरी पानी) होना आवश्यक है।

**2. सिंचाई उपकरण की अनिवार्यता**

– ड्रिप/फव्वारा सेट : डिग्गी पर ड्रिप या फव्वारा (Sprinkler) सिंचाई सिस्टम की स्थापना करना अनिवार्य है।

**3. सुरक्षा सम्बन्धी सावधानियां**

– **दीवार व जाली** : पक्की या प्लास्टिक–लाइनिंग वाली डिग्गी के चारों तरफ कम से कम 2 फीट ऊँची प्लास्टर की हुई दीवार बनाएं। इसके ऊपर जाली या कांटेदार तार लगाएं ताकि हादसे न हों।

– **सीढ़ियां** : डिग्गी में नीचे उतरने और बाहर निकलने के लिए सुरक्षित सीढ़ियां जरूर बनाएं।

**4. दस्तावेज व भुगतान से जुड़ी सावधानियां**

– **दस्तावेजों की जांच** : आपकी जमाबंदी और नक्शा 6 महीने से अधिक पुराना नहीं होना चाहिए और पटवारी द्वारा सत्यापित होना आवश्यक है।

– **सीधे बैंक खाते में** : अनुदान राशि सीधे किसान के खाते में ही जमा होती है। जन आधार और बैंक अकाउंट की जानकारी एकदम सटीक भरें।

**डिग्गी योजना**

1 स्नातकोत्तर विद्यार्थी एवं 2 सहायक आचार्य, प्रसार शिक्षा एवं संचार प्रबंधन, सामुदायिक विज्ञान महाविद्यालय स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर

राजस्थान में डिग्गी योजना किसानों को सिंचाई के लिए डिग्गी (पानी का टैंक ) बनाने पर सरकारी अनुदान (सब्सिडी) प्रदान करती है। जिससे जल संरक्षण और खेती बेहतर होती है। अनुदान राशि किसानों की श्रेणी (सामान्य, लघु, सीमांत, SC/S T, महिला) के अनुसार बदलती है और पक्की प्लास्टिक लाइनिंग वाली डिग्गी निर्माण पर मिलती है।

**आवेदन कैसे करे**

- जमाबंदी
- जमीन का नक्शा
- आधार कार्ड
- जनआधार

उपयुक्त दस्तावेज लेकर ये अपने ई–मित्र के माध्यम से या https://www-myscheme-gov-in/hi/schemes/dr सुविधा पर भी किसान स्वयं भी आवेदन कर सकता है।

– आवेदक के पास कम से कम 0.5 हेक्टेयर (लगभग सवा एकड़) कृषि योग्य सिंचित भूमि होनी चाहि।

– अनुदान लघु सीमांत महिला कृषक को 50%. अनुदान या अधिकतम 3.40 लाख रुपये अन्य श्रेणी कृषक 40% या 3 लाख रुपये का अनुदान दिया जाता है।

**डिग्गी से ग्रामीण जीवन में परिवर्तन**

जहाँ भी डिग्गीयाँ बनायी गयी हैं वहाँ खेती अधिक स्थायी और लाभदायक हो गई है । सब्जियों, फलों, नकदी फसलों की खेती बढ़ी है। किसान अब पूरे साल खेती कर सकते हैं। इससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था मजबूत हुई है। और ग्रामीण क्षेत्रों से पलायन कम हुआ है।

**निष्कर्ष**

डिग्गी न केवल जल संरक्षण का माध्यम हैं बल्कि ग्रामीण विकास की भी रीढ़ है। यह कृषि को सक्षम बनाती है, पशुपालन को मजबूत करती है और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को स्थिर आधार प्रदान करती है। इसलिए कहा जाता है कि ''डिग्गी है तो तो खेती है और खेती है तो ग्रामीण विकास है ''।

**लेखक अपने आलेख dee@raubikaner.org / rajeshvermasct@gmail.com पर हिन्दी फोन्ट कृतिदेव 10 में वर्ड फाईल व पीडीएफ दोनों में भिजवाने का श्रम करें।**

# लौकी की उन्नत खेती

नवल किशोर[1], राजवीर[1], सीमा चावला[1] व चन्द्र भान[2]

कद्दू वर्गीय सब्जियों में लौकी का प्रमुख स्थान है। इसे कद्दू या घीया के नाम से भी जाना जाता है। लौकी का उत्पत्ति स्थान उत्तरी अफ्रीका माना जाता है। लौकी के हरे फलों से सब्जी के अलावा मिठाइयाँ, रायता, आचार, कोफ्ता, खीर आदि बनाया जाता है। यह कब्ज को कम करने, पेट को साफ करने, खाँसी या बलगम दूर करने में अत्यन्त लाभकारी है। इसके मुलायम फलों में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, खाद्य रेशा, खनिज लवण के अलावा प्रचुर मात्रा में अनेकों विटामिन पाये जाते हैं। इसकी पत्तियों, तनों और गूदे से अनेक प्रकार की औशधियां भी बनाई जाती हैं। लौकी का तासीर ठंडा होता है तथा सुपाच्य होने के कारण चिकित्सक रोगी को इसकी सब्जी खाने की सलाह देते हैं। भारत में इसकी व्यापारिक खेती पंजाब, राजस्थान, हरियाणा, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, पश्चिम बंगाल, गुजरात, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु आदि राज्यों में की जाती है।

**जलवायु** – घिया (लौकी) की अच्छी उपज के लिए गर्म और मध्यम आर्द्रता वाले भौगोलिक क्षेत्र सर्वोत्तम होते हैं। इसलिए इसकी फसल जायद तथा खरीफ दोनों ऋतुओं में सफलतापूर्वक उगायी जा सकती है। बीज अंकुरण के लिए 30 से 35 डिग्री सेन्टीग्रेड तथा पौधों की बढ़वार के लिए 32 से 38 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान उत्तम होता है। लौकी पाले को सहन करने में बिल्कुल असमर्थ होती है। अधिक वर्षा और बादल वाले दिनों में रोग एवं कीटों के प्रकोप को बढ़ जाता है।

**भुमि**– इसकी खेती विभिन्न प्रकार की भुमि में की जा सकती हैं किन्तु उचित जल धारण क्षमता वाली जीवांश्मयुक्त हल्की दोमट भुमि इसकी सफल खेती के लिए सर्वोत्तम मानी गयी हैं। कुछ अम्लीय भुमि में भी इसकी खेती की जा सकती हैं तथा पी एच मान 6.0 से 7.0 हो घिया (लौकी) की खेती के लिए उपयुक्त होती है। नदियों के किनारे वाली भूमि (दियारा भूमि) भी इसके सफल उत्पादन हेतु अच्छी रहती है। पथरीली या ऐसी भूमि जहाँ पानी खड़ा होता हो तथा जल निकास का अच्छा प्रबन्ध न हो इसकी खेती के लिए अच्छी नहीं होती है।

**भूमि की तैयारी** – घिया (लौकी) की खेती हेतु खेत की तैयारी के लिए पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से और बाद में 2 से 3 जुताई देशी हल या कल्टीवेटर से करते हैं। प्रत्येक जुताई के बाद खेत में पाटा चलाकर मिट्टी को भुरभुरी और समतल कर लेना चाहिए, जिससे खेत में सिंचाई करते समय पानी कम या ज्यादा न लगे।

**उन्नत किस्में**– घिया (लौकी) की किस्मों के चयन पर विशेष ध्यान देना चाहिए। घिया (लौकी) की दो प्रकार की एक लम्बी बेलनाकार और दूसरी गोल गोलाकार प्रकार की किस्में होती है। कोयम्बटूर.1, अर्का बहार, पूसा समर प्रोलिफिक राउन्ड, पंजाब गोल, पुसा समर प्रोलेफिक लाग, नरेंद्र रश्मि, पूसा संदेश, पूसा हाईब्रिड.3, पूसा नवीन, काशी गंगा, काशी बहार, पूसा कोमल, पूसा संतुष्टि, प्रोलिफिक

1. कृषि विज्ञान केंद्र पदमपुर, स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर 2. कृषि महाविद्यालय, हनुमानगढ़, स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर

लोंग, पंजाब कोमल, पूसा मंजरी, पूसा मेघदूत, कल्यानपुर हरी लम्बी, आजाद हरित और आजाद नूतन प्रमुख उन्नत और संकर किस्मों है।

**बुआई का समय**– मैदानी क्षेत्रों में लौकी की बुआई ग्रीश्म एवं वर्शा दोनो मौसमों में की जाती है। ग्रीश्मकालीन फसल को फरवरी–मार्च में और वर्शाकालीन फसल को जून–जुलाई में बोना चाहिए। पर्वतीय क्षेत्रों में बुआई मार्च से अप्रैल के महीने में की जाती है।

**बीज की मात्रा एवं बीजोपचार**– सीधी बीज बुआई के लिए 4 से 6 किलोग्राम बीज एक हेक्टेयर क्षेत्रफल के लिए पर्याप्त होता है, परन्तु पालीथीन के थैलों या नियंत्रित वातावरण युक्त गृहों में (प्रो ट्रे) नर्सरी उत्पादन करने के लिए 1 किलोग्राम बीज ही पर्याप्त होता है। फसल को फफूँदी जनित रोगों से बचाने हेतु बीज को बोने से पूर्व थीरम या बाविस्टीन से प्रति किलोग्राम (2 ग्राम दवा प्रति 1 किलो बीज) से उपचारित करके बोना चाहिये।

**बुआई की विधि**– लौकी की बुआई के लिए गर्मी के मौसम में 2.5 से 3.5 व वर्षा के मौसम में 4.0 से 4.5 मीटर की

दूरी पर 50 सेंटीमीटर चौड़ी व 20 से 25 सेंटीमीटर गहरी नाली बना लेते हैं। इन नालियों के दोनों किनारे पर 60 से 75 सेंटीमीटर (गर्मी वाली फसल) व 80 से 85 सेंटीमीटर (वर्षाकालीन फसल) की दूरी पर बीज की बुआई करते हैं। एक स्थान पर 2 से 3 बीज 4 सेंटीमीटर की गहराई पर बोना चाहिए । बुवाई के समय बीज का नुकीला भाग नीचे की तरफ रखना चाहिए।

**खाद और उर्वरक**– मृदा की जांच के उपरान्त ही खाद एवं उर्वरकों का उपयोग करना चाहिये। परन्तु यदि किसी कारणवश मृदा जांच सम्भव न हो सके, तो उस स्थिति में प्रति हेक्टेयर जुताई के समय 200 से 250 क्विंटल गोबर की गली सड़ी खाद डालनी चाहिए। साथ में अच्छी पैदावार के लिए पोषण के रूप में 60 से 80 किलोग्राम नत्रजन, 50–60 किलोग्राम फास्फोरस और 40–50 किलोग्राम पोटाश तत्व के रूप में प्रति हेक्टेयर की दर से देनी चाहिए। नत्रजन की आधी मात्रा, फास्फोरस तथा पोटाश की पूरी मात्रा खेत की तैयारी के समय देना चाहिए। बची हुई नत्रजन की आधी मात्रा दो समान भागों में बाँटकर 4 से 5 पत्ती की अवस्था तथा शेष आधी मात्रा पौधों में फूल बनने के पहले टाप ड्रेसिंग के रूप में देनी चाहिए।

**सिंचाई एवं जल निकास** – लौकी की फसल की सिंचाई उगाने के मौसम पर निर्भर करती है। ग्रीश्मकालीन फसल में आवश्यकतानुसार 7–10 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करनी चाहिये। वर्शाकालीन फसल में प्रायः सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती परन्तु यदि लम्बी अवधि तक वर्शा न हो तो आवश्यकतानुसार सिंचाई कर देनी चाहिये। वर्शा ऋतु में जल जमाव होने पर पौधे सूख जाते हैं अतः जल निकास की उत्तम व्यवस्था करनी चाहिये।

**खरपतवार नियंत्रण**– लौकी की भरपूर उपज लेने हेतु खेत को खरपतवार मुक्त रखना अति आवश्यक है। लौकी की दोनों ऋतु की फसल में सिंचाई के बाद खेत में काफी मात्रा में खरपतवार उग आते हैं। इसके लिये ग्रीश्मकालीन एवं वर्शाकालीन फसल में क्रमशः 2–3 और 3–4 बार निराई–गुड़ाई करनी चाहिए। लौकी में पौधों की अच्छी वृद्धि और विकास के लिए निराई–गुड़ाई करके जड़ों के पास हल्की मिट्टी चढ़ा देना चाहिए। ध्यान रहे कि गहरी गुड़ाई न करें क्योंकि यह उथली जडों वाली फसल है। गुड़ाई करने से खरपतवार समाप्त होनें के साथ ही भूमि में वायु का संचार भी होता है तथा पौधों की बढ़वार एवं विकास भी अच्छा होता है परिणामस्वरूप उपज भी अधिक मिलती है।

**सहारा देना**– लौकी की भरपूर उपज एवं स्वस्थ फल प्राप्त करने हेतु वर्शाकालीन फसल को सहारा देना नितान्त आवश्यक है। वर्षा ऋतु में लौकी की अधिक उपज प्राप्त करने के

लिए लकड़ी या लोहे के द्वारा निर्मित मचान पर चढ़ा कर खेती करनी चाहिए। ऐसा करने से लौकी के फल भूमि के सम्पर्क में आकर खराब होने से बच जाते हैं और उपज भी अधिक मिलती है व इससे फलों का आकार सीधा एवं रंग अच्छा रहता है और बढ़वार भी तेजी से होती है। प्रारम्भिक अवस्था में निकलने वाली कुछ शाखाओं को काटकर निकाल देना चाहिए, इससे ऊपर विकसित होने वाली शाखाओं में फल ज्यादा बनते हैं। आमतौर पर मचान की ऊँचाई 5.0 से 5.5 फीट तक

रखते हैं। इस पद्धति के उपयोग से सस्य क्रिया सम्बन्धित लागत कम हो जाती है।

**फलों की तुड़ाई** – फलों की तुड़ाई उसकी उगाई जाने वाली किस्मों पर निर्भर करती है। फलों को तोड़ने में विशेश सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है। इसके फलों को कोमल अवस्था में ही तोड.ना चाहिए अन्यथा कठोर अवस्था में यह खाने योग्य नहीं नहीं रहती है। फल उस अवस्था में तोड़ें जब फल का छिलका कोमल, चमकीला और रोयें वाला हो,

साथ ही बीज भी कच्ची अवस्था में हों।

**उपज** – लौकी की उपज कई बातों पर निर्भर करती है जिनमें भूमि की उर्वरा शक्ति, उगाई जाने वाली किस्म व फसल की देखभाल प्रमुख हैं। प्रति हेक्टेयर जून,जुलाई और जनवरी,मार्च वाली फसलों में क्रमश 200 से 250 क्विंटल और 100 से 150 क्विंटल उपज मिल जाती है।

# अनाज भंडारण में घरेलू उत्पादों का उपयोग

राजेंद्र नागर, डॉ. दयानन्द, डॉ. रशीद खान एवं देवी लाल जाट

घरेलू स्तर पर अनाज का सुरक्षित भंड़ारण करना आवश्यक प्रक्रिया है, परिणामतः कीट एवं सूक्ष्म जैविक द्वारा खाद्य पदार्थो की गुणवत्ता एवं पौष्टीकता एवं अनाज की मात्रा को संरक्षित रखा जा सकता है। कीट और जैविक कारक विशाक्त पदार्थो को उत्पादित कर और अपने मलमूत्र से मानव स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव डालते हैं। (खाद्य और कृषि संगठन, 2021) के अनुसार उचित भण्ड़ारण तकनीकों के अभाव में खाद्यान्नों का एक बड़ा हिस्सा घरेलू स्तर पर भंडारण प्रक्रिया के दौरान (40–50 प्रतिशत) नष्ट होता है। अतः सुरक्षित भंडारण के लिये कई पारंपरिक प्रथाएं आसानी से प्रयोग में लाई जाती है ये प्रक्रियायें काफी किफायती और वातावरण के अनुकूल होती है।

अनाज को संक्रमित करने वाले कारकः अनाज में मुख्य रूप से कवक, कीट एवं चूहों का प्रकोप सर्वाधिक होता है। दानों में कालापन, तीखी गंध, साबूत बीजों के साथ टूटे हुए बीज आदि अनाज की गुणवत्ता, रंग व खाद को प्रभावित करते हैं अतः खाने की वस्तुओं अनाज की पौष्टीकता में भारी गिरावट आती है साथ ही साथ अनेक प्रकार की बीमारियां भी फैलती हैं अतः अनाज का सुरक्षित भण्ड़ारण करना अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

परंपरागत तरीकों द्वारा अनाज का भंडारणः स्थानीय रूप से उपलब्ध पौधों और उनके उत्पादों को अनाजों का सुरक्षित भंड़ारण के लिये पूर्व काल से उपयोग किया जा रहा है। आधुनिक तौर–तरीके की तुलना में परंपरागत तौर–तरीके अधिक सस्ते एवं आसानी से उपलब्ध है। प्रकृति ने मानव को कई औषधीय व निरोगी गुणों वाली जड़ी–बूटियां वनस्पति के रूप में प्रदान की हैं जैसे–नीम, हल्दी, तुलसी इत्यादि। यहां उन्हीं उत्पादों का उपयोग अनाज के सुरक्षित भण्ड़ारण के लिए किया गया है।

धूप में सुखाकरः यह भण्डारण के सर्वाधिक उपयोग मे लायी वाली आसान एवं टिकाऊ विधि है। लम्बे समय से इसका प्रयोग अनाज में नमी और कीटों के प्रजनन में रोकथाम के लिए किया जाता रहा है। इस विधि में कटाई के बाद अनाज को धूप में सुखाकर लम्बे समय के लिये उसे भंडारित कर देते हैं। यह विधि बड़े एवं छोटे दोनों स्तर के किसानों के लिए बहुत लाभदायी व प्रभावी है। यह प्रक्रिया अप्रैल, मई व जून में करने से कीड़ों और कीटों पर काबू पाया जा सकता है। हल्दीः प्रति किलो अनाज में 40 ग्राम हल्दी चूर्ण का भी उपयोग एक अच्छे विकल्प के रूप में किया जाता है। भंडारण से पहले अनाज को हल्दी के चूर्ण के साथ हल्के हाथ से रगड़कर आधे घंटे के लिए धूप में सूखा देते हैं। कच्ची हल्दी का इस्तेमाल भी कीटों से सुरक्षा के लिए किया जाता है। इसकी तेज गंध एवं नाशीजीव रोधीगुण के कारण कीट अनाज से दूर रहते हैं। यह उपचार कीटों से लम्बे समय तक सुरक्षा प्रदान करता है और खाने की दृष्टी से भी सुरक्षित है।

नीमः नीम की पत्तियों बीजों व तेल का इस्तेमाल कीटों व कीड़ों को भंडारित अनाज से दूर भगाने के लिए किया जाता रहा है। इसके लिए पेड़ से ताजी पत्तियों को तोडकर उन्हें छाया में सुखा लिया जाता है। इन सूखी पत्तियों को सीधे अनाज के साथ मिलाकर, अनाज की पेटी को बंद कर दिया जाता है यह विधि बहुत ही सस्ती, सुरक्षित एवं प्रभावी है। इसी प्रकार बीजों का धूप में सूखाकर चूर्ण तैयार करें इनके पश्चात् इसका 10 प्रतिशत घोल तैयार कर जूट के बने थैलों पर उपचारित करने के लिये किया जाता है। नीम की पत्तियों का उपयोग घरेलू एवं परम्परागत तौर पर किसानों द्वारा बीज उपचार हेतु किया जाता हैं। 1 किग्रा. बीजों के उपचार

कृषि विज्ञान केंद्र, आबूसर–झुंझुनूं (राजस्थान)

हेतु 10 से 20 मि.ली. नीम का तेल की आवश्यकता होती है उचित परिणाम के लिये नीम के तेल में अरण्डी का तेल 1.1 में मिलाकर उपचारित करने में उपयुक्त है।

लहसुनः लहसुन के नाशीरोधी गुण के कारण कीड़ों के संक्रमण की संख्या को कम किया जा सकता है। लहसुन के गुच्छों को चावलों की सतह में रखकर अनाज की पेटी की अच्छी तरह से बंद कर देते हैं। लहसुन की गंध के कारण कीड़े पहुंच से बाहर हो जाते हैं। इसलिये अनाज और चावलों के भंड़ारण में लहसुन के गुच्छों को प्रयोग किया जाता है।

चूनाः चूना, नाशीजीवों को नियंत्रित करने के लिए प्रयोग की सरल विधि है। यह बहुत ही सस्ता एवं आसान उपाय है। नाशीजीवों को नियंत्रित करने के लिए इस विधि में चूने का चूर्ण बनाकर उसे चावलों के साथ मिला दें, फिर जूट से बने थैले में डालकर सूखे स्थान पर रख दें। इसकी महक से कीड़े दूर भाग जाते हैं यह कीटों की प्रजनन प्रक्रिया को भी रोक देता है। साधारणतः 10 ग्राम चुने का इस्तेमाल 1 किग्रा. अनाज को उपचारित करने में किया जाता है। यह उपचार नाशीजीवों के आक्रमण से लम्बे समय तक बचाता है।

राखः इस विधि ने दालों को भण्डारित करने के लिए मिट्‌टी से बने घड़े के अन्दर 3/4 भाग दाल व बाकी बचे एक चौथाई भाग में गाय का गोबर और लकड़ी की राख से भरकर बंद कर दे। छः महीने के बाद यह विधि फिर से दोहराएं। अनाज को भी इसी प्रकार गाय के गोबर की राख के साथ मिलाकर भंडारित करते है, जो कीटरोधी होती है।

नमकः नमक एक सस्ता, सुरक्षित और पारंपरिक उपाय है जिसका उपयोग भंडारण कीटों के नियंत्रण में किया जाता है। पुराने समय से ही नमक का उपयोग कवक एवं जीवाणुओं से बचाव के लिए किया जाता रहा है। नमक कीड़ों के प्रवेश को रोकता है। नमक नमी को अवशोषित करता है, जिससे भंडारण स्थान सूखा रहता है। कम नमी में कीटों का विकास और प्रजनन रुक जाता है। सामान्यतः 1 क्विंटल अनाज में लगभग 200–250 ग्राम नमक (2–2.5 प्रतिशत) नमक मिलाया जा सकता है।

यह विधि विशेषकर दालों और सूखे अनाजों में उपयोगी होती है। नमक वाले पानी से सफाई गोदाम, ड्रम या बोरियों को धोकर सुखाया जाता है। इससे पुराने कीट और उनके अंडे नष्ट होते हैं। यह विधि नाशीजीवों के आक्रमण जैसे भृंग, घुन, पंतगों, छोटी भंडारण जीवों और अंडों की वृद्धि को कम करती है।

**पत्रिका में प्रकाशित आलेख/विचार लेखकों के अपने हैं।**

# कृषि में मूल्य संवर्धन द्वारा आय में वृद्धि

**शिफाली[1], डॉ. सीमा त्यागी[2]**

भारत की अर्थव्यवस्था में कृषि का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। देश की बड़ी आबादी आज भी कृषि एवं पशुपालन पर निर्भर है। लंबे समय तक किसानों का मुख्य उद्देश्य केवल अधिक उत्पादन करना रहा, लेकिन वर्तमान समय में परिस्थितियाँ बदल चुकी हैं। अब केवल उत्पादन बढ़ाना पर्याप्त नहीं है, बल्कि उत्पाद को सही रूप में तैयार करके अधिक लाभ प्राप्त करना भी आवश्यक हो गया है। आज उपभोक्ता ऐसे उत्पादों को अधिक पसंद करते हैं जो साफ–सुथरे, पैक किए हुए, पौष्टिक तथा उपयोग में आसान हों। इसी कारण "मूल्य संवर्धन" कृषि क्षेत्र में तेजी से लोकप्रिय हो रहा है। मूल्य संवर्धन के माध्यम से किसान अपने कृषि उत्पादों को प्रसंस्कृत करके अधिक मूल्य पर बेच सकते हैं तथा अपनी आय में उल्लेखनीय वृद्धि कर सकते हैं।

विशेष रूप से राजस्थान का बिकानेर क्षेत्र, जो शुष्क एवं मरुस्थलीय परिस्थितियों के लिए जाना जाता है, मूल्य संवर्धन के लिए अत्यंत उपयुक्त क्षेत्र माना जाता है। यहाँ बाजरा, ग्वार, मूंग, मोठ, मसाले तथा दुग्ध उत्पादन बड़े पैमाने पर होता है। इन उत्पादों का वैज्ञानिक तरीके से प्रसंस्करण एवं विपणन करके किसानों की आर्थिक स्थिति मजबूत की जा सकती है।

## मूल्य संवर्धन क्या है?

जब किसी कृषि उत्पाद को उसकी मूल अवस्था से बेहतर, उपयोगी, आकर्षक और अधिक लाभकारी रूप में तैयार किया जाता है, जिससे उसका बाजार मूल्य बढ़ जाए, तो उसे मूल्य संवर्धन कहा जाता है।

"खाद्य प्रसंस्करण प्रौद्योगिकी" के अनुसार मूल्य संवर्धन में प्रसंस्करण, सफाई, ग्रेडिंग, पैकेजिंग, लेबलिंग और ब्रांडिंग जैसी प्रक्रियाएँ शामिल होती हैं।

पहले किसान अपनी उपज को सीधे कच्चे रूप में बेच देते थे, जिससे उन्हें कम लाभ मिलता था। लेकिन जब उसी उत्पाद को प्रसंस्कृत करके नया रूप दिया जाता है, तो उसकी उपयोगिता और बाजार में माँग दोनों बढ़ जाती हैं। इससे किसान को अधिक आय प्राप्त होती है।

| कच्चा कृषि उत्पाद | मूल्य संवर्धित उत्पाद |
|---|---|
| गेहूँ | आटा, सूजी, दलिया |
| बाजरा | कुकीज, लड्डू, हेल्थ ड्रिंक |
| दूध | घी, पनीर, दही |
| मूंगफली | तेल, नमकीन |
| टमाटर | सॉस, चटनी |
| मूंग एवं मोठ | पापड़, बड़ी, स्नैक्स |
| मसाले | पैक्ड एवं ब्रांडेड मसाले |

## बीकानेर क्षेत्र में मूल्य संवर्धन की संभावनाएँ

बीकानेर राजस्थान का प्रमुख शुष्क क्षेत्र है। यहाँ कम पानी में उगाई जाने वाली फसलें जैसे बाजरा, मूंग, मोठ, ग्वार तथा मसाले विशेष महत्व रखते हैं। इन फसलों का मूल्य संवर्धन करके किसान अतिरिक्त आय अर्जित कर सकते हैं तथा ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के नए अवसर उत्पन्न किए जा सकते हैं।

### 1. बाजरा आधारित मूल्य संवर्धन

बीकानेर क्षेत्र में बाजरा प्रमुख फसल के रूप में उगाया जाता है। यह कम पानी में अच्छी पैदावार देने वाली पौष्टिक फसल है। वर्तमान समय में बाजरा को "सुपर फूड" के रूप में विश्वभर में पहचान मिल रही है क्योंकि इसमें फाइबर, आयरन, कैल्शियम, प्रोटीन तथा अन्य पोषक तत्व प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। बाजरे का मूल्य संवर्धन करके किसानों की आय बढ़ाई जा सकती है तथा ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के नए अवसर उत्पन्न किए जा सकते हैं।

**बाजरे से बनाए जा सकने वाले मूल्य संवर्धित उत्पाद**

- बाजरा आटा
- बाजरा कुकीज एवं बिस्किट
- बाजरा नमकीन
- बाजरा लड्डू
- इंस्टेंट खिचड़ी मिश्रण
- बाजरा पास्ता एवं नूडल्स
- बाजरा फ्लेक्स
- बाजरा दलिया
- हेल्थ ड्रिंक पाउडर
- बाजरा ऊर्जा बार
- रेडी–टू–कुक मिश्रण
- बाजरा इडली एवं डोसा मिक्स
- बाजरा बेकरी उत्पाद

1. स्नातकोत्तर विद्यार्थी, 2. सहायक आचार्य
प्रसार शिक्षा एवं संचार प्रबंधन विभाग, सामुदायिक विज्ञान महाविद्यालय, स्वामी केशवानंद राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय बीकानेर

**मूल्य संवर्धन की प्रक्रियाएँ**

- सफाई एवं ग्रेडिंग
- पिसाई एवं प्रसंस्करण
- मिश्रण एवं फ्लेवरिंग
- आधुनिक पैकेजिंग
- ब्रांडिंग एवं लेबलिंग

यदि किसान एवं स्वयं सहायता समूह बाजरा प्रसंस्करण एवं पैकेजिंग कार्य अपनाएँ, तो यह ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत करने के साथ–साथ पोषण सुरक्षा और महिला सशक्तिकरण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

**2. मूंग एवं मोठ आधारित उत्पाद**

**मूंग एवं मोठ आधारित उत्पादों में मूल्य संवर्धन**

बीकानेर क्षेत्र में मूंग एवं मोठ का उत्पादन बड़े पैमाने पर किया जाता है। ये दालें पौष्टिकता से भरपूर होती हैं तथा इनमें प्रोटीन, फाइबर, आयरन एवं अन्य आवश्यक पोषक तत्व पाए जाते हैं। इनका मूल्य संवर्धन करके किसानों एवं ग्रामीण महिलाओं की आय में वृद्धि की जा सकती है।

**मूंग एवं मोठ से बनाए जा सकने वाले मूल्य संवर्धित उत्पाद**

- पापड़
- बड़ी
- नमकीन एवं भुजिया
- अंकुरित दाल पैक
- रेडी–टू–कुक मिश्रण
- दाल सूप मिक्स
- हेल्दी स्नैक्स
- दाल आटा
- इंस्टेंट चीला मिक्स
- प्रोटीन पाउडर
- दाल आधारित बिस्किट एवं कुकीज
- खाखरा एवं सेव

**मूल्य संवर्धन की प्रक्रियाएँ**

- साफ–सफाई एवं छंटाई
- सुखाना
- भूनना एवं पिसाई
- पैकेजिंग
- ब्रांडिंग एवं लेबलिंग

यदि स्वयं सहायता समूह इन उत्पादों का निर्माण एवं विपणन करें, तो ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सृजन के साथ–साथ महिला सशक्तिकरण को भी बढ़ावा मिल सकता है।

**3. मसाले एवं औषधीय फसलें**

राजस्थान के मसाले देशभर में प्रसिद्ध हैं। बीकानेर क्षेत्र में मसालों की खेती किसानों के लिए आय का महत्वपूर्ण स्रोत है।

**प्रमुख मसाले एवं औषधीय फसलें**

- जीरा
- मैथी
- धनिया
- लाल मिर्च
- सौंफ
- अजवाइन
- अश्वगंधा
- एलोवेरा
- तुलसी

**मूल्य संवर्धित उत्पाद**

- पैक्ड मसाला पाउडर
- रेडी–टू–यूज मसाला मिक्स
- ऑर्गेनिक मसाले
- हर्बल चाय
- औषधीय पाउडर एवं कैप्सूल – अश्वगंधा, तुंबा
- एलोवेरा जूस एवं जेल
- तुलसी ड्रॉप्स
- मसाला तेल एवं अर्क
- इंस्टेंट करी मिक्स
- हर्बल हेल्थ ड्रिंक

**मूल्य संवर्धन की प्रक्रियाएँ**

- सफाई एवं ग्रेडिंग
- सुखाना एवं भंडारण
- पिसाई एवं प्रसंस्करण
- पैकेजिंग
- लेबलिंग एवं ब्रांडिंग

यदि किसान एवं स्वयं सहायता समूह आधुनिक पैकेजिंग, ब्रांडिंग तथा ऑनलाइन विपणन को अपनाएँ, तो मसाले एवं औषधीय उत्पादों को बड़े बाजार तक पहुँचाया जा सकता है, जिससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूती मिलेगी।

**4. दुग्ध उत्पादों में मूल्य संवर्धन**

पशुपालन राजस्थान के ग्रामीण क्षेत्रों की अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण आधार है। विशेष रूप से बीकानेर क्षेत्र में दुग्ध उत्पादन ग्रामीण परिवारों की आय का प्रमुख स्रोत है। दूध को सीधे बेचने की बजाय उससे विभिन्न मूल्य संवर्धित उत्पाद तैयार करके अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। वर्तमान समय में

पारंपरिक उत्पादों के साथ–साथ नए एवं आधुनिक डेयरी उत्पादों की माँग भी तेजी से बढ़ रही है।

**पारंपरिक दुग्ध उत्पाद**

- घी
- पनीर
- दही
- मावा
- मिठाइयाँ

**नवीन एवं मूल्य संवर्धित दुग्ध उत्पाद**

- फ्लेवर्ड मिल्क (केसर, इलायची, चॉकलेट आदि)
- फ्लेवर्ड दही
- प्रोबायोटिक दही
- लस्सी एवं छाछ पैक
- चीज
- मक्खन
- आइसक्रीम
- मिल्क शेक
- मिल्क पाउडर
- हर्बल दूध पेय
- हाई–प्रोटीन डेयरी ड्रिंक
- डेयरी आधारित मिठाई मिक्स
- कुल्फी एवं फ्रोजन डेयरी उत्पाद

यदि ग्रामीण महिलाएँ स्वयं सहायता समूह बनाकर दुग्ध प्रसंस्करण कार्य करें, तो इससे आर्थिक सशक्तिकरण, रोजगार सृजन तथा ग्रामीण विकास को बढ़ावा मिल सकता है।

**प्रमुख सामान्य लाभ**

- कृषि उत्पादों का बाजार मूल्य बढ़ जाता है।
- किसानों को कच्चे उत्पाद की तुलना में अधिक लाभ प्राप्त होता है।
- उत्पादों की शेल्फ लाइफ बढ़ जाती है, जिससे खराब होने की संभावना कम होती है।
- स्थानीय उत्पादों को ब्रांड के रूप में पहचान मिलती है।
- राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय बाजारों तक पहुँच संभव होती है।
- ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार एवं स्वरोजगार के अवसर बढ़ते हैं।
- महिलाओं एवं युवाओं को उद्यमिता से जुड़ने का अवसर मिलता है।
- छोटे एवं कुटीर उद्योगों को बढ़ावा मिलता है।
- पैकेजिंग, ब्रांडिंग एवं ऑनलाइन विपणन के माध्यम से बिक्री में वृद्धि होती है।
- किसानों की बिचौलियों पर निर्भरता कम होती है।
- खाद्य प्रसंस्करण एवं ग्रामीण उद्योगों का विकास होता है।
- ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूती मिलती है।
- पोषणयुक्त एवं गुणवत्तापूर्ण खाद्य उत्पाद उपभोक्ताओं तक पहुँचते हैं।
- आत्मनिर्भर भारत एवं महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा मिलता है।

# जैविक खेती

भाविका दैया[1] एवं डॉ. कोमल सिंह[2]

**प्रस्तावना :** भारत एक कृषि प्रधान देश है जहाँ अधिकांश जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। वर्तमान समय में रासायनिक खादों और कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग से भूमि की उर्वरता कम हो रही है तथा मानव स्वास्थ्य पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। ऐसे में जैविक खेती एक सुरक्षित और टिकाऊ विकल्प के रूप में उभरकर सामने आई है। यह खेती प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के साथ–साथ पर्यावरण संतुलन बनाए रखने में सहायक है।

**जैविक खेती का उद्देश्य :** जैविक खेती का मुख्य उद्देश्य प्राकृतिक तरीकों से कृषि उत्पादन बढ़ाना और मिट्टी की उर्वरता बनाए रखना है, जिससे पर्यावरण और मानव स्वास्थ्य दोनों सुरक्षित रहें।

**मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं :**

- रासायनिक मुक्त कृषि को बढ़ावा देना।
- मिट्टी की उर्वरता और संरचना को सुधारना।
- पर्यावरण संरक्षण करना।
- किसानों की लागत कम करना।
- स्वास्थ्यवर्धक एवं सुरक्षित खाद्य पदार्थ उपलब्ध कराना।

**जैविक खेती के अंतर्गत किए जाने वाले कार्य :** जैविक खेती में ऐसे कार्य किए जाते हैं जिनसे प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण हो और उत्पादन टिकाऊ बने।

**मुख्य कार्य :**

1. **जैविक खाद का उपयोग :** गोबर खाद, कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट आदि का उपयोग किया जाता है जिससे मिट्टी की उर्वरता बढ़ती है।
2. **फसल चक्र अपनाना :** एक ही खेत में अलग–अलग फसलों को क्रम से उगाया जाता है जिससे मिट्टी की पोषक तत्वों की कमी नहीं होती।
3. **जैविक कीट नियंत्रण :** नीम, लहसुन, गोमूत्र आदि से बने प्राकृतिक कीटनाशकों का उपयोग किया जाता है।
4. **हरी खाद का प्रयोग :** ढैंचा, सन जैसी फसलों को मिट्टी में मिलाकर भूमि की उर्वरता बढ़ाई जाती है।
5. **जल संरक्षण :** वर्षा जल संचयन एवं उचित सिंचाई तकनीकों का उपयोग किया जाता है।

**जैविक खेती की विशेषताएँ:**

1. **पर्यावरण के अनुकूल :** इसमें रासायनिक पदार्थों का उपयोग नहीं होता जिससे पर्यावरण सुरक्षित रहता है।
2. **मिट्टी की उर्वरता में वृद्धि :** जैविक खाद मिट्टी की गुणवत्ता को सुधारती है।
3. **कम लागत वाली खेती :** किसानों को बाहरी इनपुट पर कम खर्च करना पड़ता है।
4. **स्वास्थ्य के लिए लाभकारी :** जैविक उत्पाद मानव स्वास्थ्य के लिए सुरक्षित होते हैं।

**कृषि विकास में योगदान :** जैविक खेती ग्रामीण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इससे किसानों की आय में वृद्धि होती है और कृषि उत्पादन टिकाऊ बनता है। साथ ही, यह कृषि को पर्यावरण के अनुकूल बनाती है।

**महिलाओं और युवाओं पर प्रभाव**

**महिलाओं के लिए लाभ :**

- आत्मनिर्भरता में वृद्धि।
- रोजगार के अवसर बढ़ते हैं।
- परिवार में निर्णय लेने की क्षमता बढ़ती है।

**युवाओं के लिए लाभ :**

- कृषि में नए अवसर मिलते हैं।
- स्वरोजगार को बढ़ावा मिलता है।
- गांव में ही रोजगार उपलब्ध होता है।

**पर्यावरण संरक्षण में भूमिका :** जैविक खेती में रासायनिक पदार्थों का उपयोग नहीं होने से जल, वायु और मिट्टी प्रदूषण कम होता है। यह प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में सहायक है और आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित वातावरण प्रदान करती है।

**चुनौतियाँ :** जैविक खेती को सफल बनाने के लिए कुछ चुनौतियों का समाधान आवश्यक है :

- किसानों में जागरूकता की कमी।
- प्रारंभ में उत्पादन कम होना।
- बाजार की उचित व्यवस्था का अभाव।
- प्रमाणन प्रक्रिया जटिल होना।

**निष्कर्ष :** अंततः कहा जा सकता है कि जैविक खेती एक टिकाऊ और सुरक्षित कृषि प्रणाली है। यह न केवल पर्यावरण की रक्षा करती है बल्कि किसानों की आय बढ़ाने और लोगों को स्वस्थ भोजन उपलब्ध कराने में भी सहायक है। यदि इसे सही तरीके से अपनाया जाए, तो यह भारत के कृषि क्षेत्र को नई दिशा दे सकती है।

1. स्नातक, सामुदायिक विज्ञान महाविद्यालय, बीकानेर 2. अतिथि व्याख्याता, प्रसार शिक्षा एवं संचार प्रबंधन विभाग, सामुदायिक विज्ञान महाविद्यालय, बीकानेर

# लखपति दीदी योजना

अंकिता[1] एवं डॉ. कोमल सिंह[2]

**भूमिका :** भारत में ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की आर्थिक स्थिति को सशक्त बनाने के लिए सरकार द्वारा विभिन्न योजनाएँ चलाई जा रही हैं। इन्हीं में से एक महत्वपूर्ण योजना है लखपति दीदी योजना। इस योजना का उद्देश्य ग्रामीण महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाना और उनकी आय को बढ़ाकर उन्हें "लखपति" बनाना है। यह योजना स्वयं सहायता समूह (SHG) के माध्यम से महिलाओं को रोजगार और कौशल प्रदान करती है।

**योजना का उद्देश्य :** इस योजना का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण महिलाओं की आय बढ़ाना और उन्हें आर्थिक रूप से मजबूत बनाना है, ताकि वे अपने परिवार और समाज में सशक्त भूमिका निभा सकें।

मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं :

- ग्रामीण महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाना।
- महिलाओं की वार्षिक आय ₹1 लाख या उससे अधिक करना।
- स्वयं सहायता समूहों (ैभ्ळे) को मजबूत बनाना।
- कौशल विकास के माध्यम से रोजगार उपलब्ध कराना।
- ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सशक्त बनाना।

**योजना के अंतर्गत किए जाने वाले कार्य :** इस योजना के अंतर्गत महिलाओं को प्रशिक्षण, संसाधन और आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है जिससे वे स्वरोजगार शुरू कर सकें।

**मुख्य कार्य :**

1. **कौशल विकास प्रशिक्षण :** महिलाओं को सिलाई, कढ़ाई, डेयरी, खाद्य प्रसंस्करण, हस्तशिल्प आदि का प्रशिक्षण दिया जाता है।
2. **स्वयं सहायता समूह (SHG) का गठन :** महिलाओं को समूह बनाकर बचत और ऋण की सुविधा दी जाती है।
3. **स्वरोजगार को बढ़ावा :** महिलाओं को छोटे व्यवसाय शुरू करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है।
4. **वित्तीय सहायता एवं ऋण सुविधा :** सरकार और बैंकों के माध्यम से आसान ऋण उपलब्ध कराया जाता है।
5. **विपणन सहायता (Marketing Support) :** महिलाओं द्वारा बनाए गए उत्पादों को बाजार तक पहुँचाने में सहायता दी जाती है।

**योजना की विशेषताएँ**

1. **महिला सशक्तिकरण :** यह योजना महिलाओं को आर्थिक और सामाजिक रूप से सशक्त बनाती है।
2. **आत्मनिर्भरता पर जोर :** महिलाओं को खुद का रोजगार शुरू करने के लिए प्रेरित किया जाता है।
3. **समूह आधारित कार्य प्रणाली :** SHG के माध्यम से सहयोग और सामूहिक विकास होता है।
4. **आय में वृद्धि :** महिलाओं की नियमित आय सुनिश्चित की जाती है।

**ग्रामीण विकास में योगदान :** यह योजना ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर बढ़ाती है और महिलाओं की भागीदारी से गांव की अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाती है। इससे गरीबी कम होती है और जीवन स्तर में सुधार होता है।

**महिलाओं और युवाओं पर प्रभाव**

**महिलाओं के लिए लाभ :**

- आर्थिक आत्मनिर्भरता बढ़ती है।
- आत्मविश्वास और सामाजिक सम्मान में वृद्धि होती है।
- परिवार के निर्णयों में भागीदारी बढ़ती है।

**युवाओं के लिए लाभ :**

- स्वरोजगार के अवसर बढ़ते हैं।
- कौशल विकास होता है।
- गांव में ही रोजगार उपलब्ध होता है।

**सामाजिक एवं आर्थिक भूमिका :** यह योजना महिलाओं को समाज में एक नई पहचान देती है। इससे न केवल उनकी आय बढ़ती है बल्कि वे समाज में नेतृत्व की भूमिका भी निभाने लगती हैं। यह योजना गरीबी उन्मूलन में भी सहायक है।

**चुनौतियाँ :** इस योजना को सफल बनाने के लिए कुछ चुनौतियों का समाधान आवश्यक है :

- महिलाओं में जागरूकता की कमी।
- प्रशिक्षण की गुणवत्ता में अंतर।
- बाजार तक पहुँच में कठिनाई।
- वित्तीय संसाधनों की कमी।

**निष्कर्ष :** अंततः कहा जा सकता है कि लखपति दीदी योजना ग्रामीण महिलाओं के सशक्तिकरण की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। यह योजना महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाकर उनकी आय बढ़ाने में सहायक है। यदि इसे सही तरीके से लागू किया जाए, तो यह ग्रामीण विकास और महिला सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

1. स्नातक, सामुदायिक विज्ञान महाविद्यालय, 2. अतिथि व्याख्याता प्रसार शिक्षा एवं संचार प्रबंधन विभाग, सामुदायिक विज्ञान महाविद्यालय, बीकानेर

# जून माह के कृषि कार्य

**डॉ. एन. के. शर्मा**, निदेशक अनुसंधान
स्वा. के. रा. कृ. वि., बीकानेर

**सस्य विज्ञान**

जैसा कि विदित है जोन 1 सी में जहां पर सिंचाई की समुचित व्यवस्था है, वहां पर देसी कपास नरमा, एवं मूंगफली तथा अन्य खरीफ फसलों की सस्य क्रियाओं के लिए जून का महिना महत्वपूर्ण है। फसलवार प्रभावी बिन्दुओं पर विचार किया गया है जो इस प्रकार हैः—

1. **देसी कपासः**— देसी कपास में प्रथम सिंचाई का उपयुक्त समय बुवाई के 35—40 दिन बाद का है पानी का वितरण समान रुप से किया जाना चाहिए। नत्रजन की आधी मात्रा 7.5 कि.ग्रा. है जो बुवाई के समय नहीं दी जा सकी है उसे प्रथम सिंचाई के समय प्रति बीघे के हिसाब से दिया जा सकता है। उर्वरक समान रुप से कतारों में देवें। ध्यान रहे उर्वरक पत्तियों पर न गिरें। देसी कपास में सिंचाई के पश्चात् निराई—गुड़ाई का करना लाभदायक पाया गया है। यह कार्य त्रिफाली या कस्सी से करें। प्रथम सिंचाई बुआई के 35—40 दिन के मध्य हो, आवश्यकता से अधिक पौधों को उखाड़कर पौधें की संख्या लगभग 12 हजार पोधे प्रति बीघा रखें।

2. **नरमाः**— प्रथम सिंचाई बुवाई के 4—5 सप्ताह के पश्चात् दी जाये। इस समय पौधों को पानी की आवश्यकता सीमित होती है। करीब 6 सप्ताह तक पौधों के विकास का समय होता है। इस समय पौधे को पानी की आवश्यकता पहले के मुकाबले दुगुनी हो जाती है और करीब 4—5 मि.मि. पानी प्रतिदिन चाहिये जो बढकर 7—8 मि.मि. पानी प्रतिदिन चाहिये अतः बुवाई के 30—35 दिन पर प्रथम सिंचाई अवश्य करें। जिन खेतों में बेसल डोज नहीं दिया गया है उन खेतों में खड़ी फसल में प्रथम सिंचाई के समय डीएपी की 22 कि.ग्रा. मात्रा ड्रिल की जा सकती है। कतारों से अनावश्यक पौधों को निकालकर पौधें से पौधे की दूरी 30 से.मी. रखें। विरलीकरण सिंचाई से पूर्व या सिंचाई के बाद करें। विरलीकरण करते समय कमजोर पौधे निकालें। दूसरी बार विरलीकरण की आवश्यकता है तो 15—20 दिन बाद अवश्य दोहरायें। विरलीकरण कर पौधें की संख्या लगभग 12000 प्रति बीघा रखें।

3. **मूंगफलीः**—पहली सिंचाई बुवाई के 3—4 सप्ताह पर देवें। दूसरी सिंचाई आवश्यक है तो वर्षा पूर्व देवें। सिंचाई के पानी की गहराई 55—60 मि.मि. अवश्य रखें।फसल को खरपतवार रहित रखें सिंचाई के बाद या वर्षा होने के बाद 30—40 दिन की अवस्था पर गुड़ाई करें, जिससे गांठदार घास नष्ट किया जा सके। फूल आने के बाद गुड़ाई न करें।बुआई के समय जिप्सम नहीं दिया गया है तो तन्तु बनने से पूर्व 60 कि.ग्रा. प्रति बीघे के हिसाब से खड़ी फसल में दी जा सकती है।मूंगफली की किस्म टी.जी.—37 ए की बुवाई जून के अन्तिम सप्ताह में करें। सस्य क्रियाएं पूर्व में बताई अनुसार होंगी।

4. **चारे की फसलेंः**—आवश्यकतानुसार सिंचाई करें, सप्ताह में एक बार सिंचाई देना आवश्यक है अधिक गर्मी में 5—6 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करना लाभदायक हैं।

5. **बाजराः**—बीज दर : 1 कि.ग्रा. प्रति बीघा।बुवाई का समय : जून माह में बुवाई के अनुकूल वर्षा होने पर करें। इसका उपयुक्त समय मध्य जून से जुलाई का द्वितीय सप्ताह रहता है । बाजरा की बुवाई 45—60 से.मी. पर कतारों में करें। **उपयुक्त किस्में**: एच.एच.बी.—67 (उन्नत), एच.एच.बी.—226, जी.एच.बी.—538 एवं आई.सी.एम.एच.—356, आर.एच.बी.—121, आर.एच.बी.—177, एम.पी.एम.एच. 17। खाद एवं उर्वरक : सिंचित क्षेत्र में अधिक उपज लेने के लिये 23 कि.ग्रा. नत्रजन एवं 8 कि.ग्रा. फास्फोरस प्रति बीघा की आवश्यकता होती हैं। 200 मि.मि. से कम वर्षा वाले क्षेत्र में 10 कि.ग्रा. नत्रजन प्रति बीघा बुवाई के समय देवे। मिट्टी परिक्षण के आधार पर फास्फोरस देवें।

6. **मोठः**—बीज दर : 3 — 4 कि.ग्रा. प्रति बीघा।बुवाई का समय : वर्षारम्भ में बुवाई करें। देरी से वर्षा होने पर बुवाई 30 जुलाई तक की जा सकती हैं। बुवाई 30 से.मी. पर कतारों में करें पौधे से पौधे की दूरी 15—20 से.मी. रखें। उर्वरक : 8 कि.ग्रा. फास्फोरस 5 कि. ग्रा. नत्रजन प्रति बीघा देवे। बारानी क्षेत्रों में फास्फोरस की आधी मात्रा कर देवें।उपयुक्त किस्मेंः आर.एम.ओ.—225, आर.एम.ओ.—435, आर.एम.ओ.—423, आर.एम.ओ.—40 आर.एम.ओ.—257 ।

7. **ग्वारः**—बुवाई का समय : जून के अन्तिम सप्ताह से जुलाई का प्रथम पखवाड़ा। बीज की मात्रा : सिंचित क्षेत्र में 6 कि.ग्रा. तथा बारानी क्षेत्रों में 4 कि.ग्रा. बीज प्रति बीघा बोएं। ग्वार की बुवाई 30 से.मी. पर कतारों में करें।**खाद एवं उर्वरकः** 0.6 टन वर्मी कम्पोस्ट अन्तिम जुताई के समय कतार में दें। एक बीघा क्षेत्र के लिए 5 किलोग्राम नत्रजन + 8 किलोग्राम फास्फोरस देवे इसके लिये 11 कि.ग्रा. यूरिया 50 सिंगल सुपरफॉस्फेट या 18 कि. ग्रा. डी.ए.पी. एवं 4 कि.ग्रा. यूरिय प्रति बीघा देवें।**उपयुक्त किस्में**:एच.जी.—75,आर.जी.सी.—936,आर.जी.सी.—197, आर. जी.सी.—986, आर.जी.सी.—1017 एवं आर.जी.सी.—1003, आर. जी.सी. 1066 एवं 1055।

8. **मूंगः** बुवाई का समय जून का द्वितीय पखवाडा है। **उर्वरक** 8कि.ग्रा. फास्फोरस 5 कि.ग्रा. नत्रजन प्रति बीघा बुवाई के समय देवे। **उपयुक्त किस्में**: एस एम एल—668, एमयूएम—2 , आर एम जी —62 , आर एम जी —268 एवं के—851 ।**पौध व्याधि**

**बाजराः**—माह जून में मानसून की प्रथम वर्षा के पश्चात बुआई शुरु होती है। गुन्दिया या चेपा अरगट रोग से फसल को बचाने के लिये बीज को नमक के 20 प्रतिशत घोल (1 कि.ग्रा. नमक व पांच लीटर पानी) में पांच मिनट तक डुबो कर हिलायें। तैरते हुए हल्के बीज व कचरे को निकालें। शेष बचे हुये बीजों को साफ पानी से धोकर अच्छी तरह सुखा लेवे। तत्पश्चात् थारइम नामक दवा तीन ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज के हिसाब से बीजों को उपचारित करके ही बुवाई करें। फसल चक्र अपनावें, लगातार उसी खेत में

बाजरे की फसल नहीं लेवे। बाजरा में अरगट रोग (क्लेविसेप्स फ्यूजीफार्मिस) तथा मृदूरोमिल (तुलासिता) या हरित बाली रोग (स्कलेरोस्पोरा ग्रेमिनिकोला) नामक कवकों से लगते हैं। अतः बुआई से पूर्व बीजोपचार एप्रोन एस.डी.–35, 6 ग्राम प्रति किलो बीज के हिसाब से करें एवं रोग रोधी पौध–किस्मों का चुनाव करें।

**रोग रोधी किस्में** :– आर.सी.बी.–2 तुलासिता, कण्डुआ व रोली रोग की प्रतिरोधी, राज – 171 व एच.एच.बी.–60 डाउनी मिल्डयू रोग रोधी । राज. बाजरा चरी–2 (जोबनेर) चरी हेतु उपयुक्त।

**नरमा एवं कपास** :– जीवाणु अंगमारी रोग (ब्लेक आर्म रोग) **लक्षण**:– यह रोग जीवाणु जेन्थोमोनास मालवेसियरम द्वारा फैलता है। सर्वप्रथम बीजपत्रों की निचली सतह पर छोटे–छोटे जलीय धब्बे प्रकट होते है। ये धब्बे धीरे–धीरे बढ़कर अनियमित आकार के धब्बे बनाकर बीजपत्रों को सूखकर नष्ट कर देते है। धब्बों का रंग भूरे से काला हो जाता है। बीजपत्रों को रोग ग्रस्त करने के बाद यह तने को ग्रस्त करता हुआ पौधें की वर्धन–शिखा तक पहुँच जाता है। जिससे पौधे की मृत्यु हो जाती है। उग्र संक्रमण से तने पर गहरी काली दरारें पड़ जाती है एवं शाखाओं का रंग काला हो जाता है। **रोकथाम**:–इस रोग की रोकथाम के लिये 80 ग्राम स्ट्रेप्टोसाइक्लिन व एक कि.ग्रा. कॅपर ऑक्सीक्लोराइड का 400 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टर छिड़काव करें।**लीफ कर्ल वाइरस रोग**:–यह रोग पत्तियों पर दिखाई देता है। रोग रोधी पत्तियॉ भीतर की तरफ मुड़कर अधोमुखाकर प्याले का रुप ले लेती है। रोग की उग्रमा के कारण शिराये छोटी एवं मोटी हो जाती है। रोगी पौधे छोटे रह जाते हैं। नई निकलने वाली पत्तियां भी मुड़ जाती हैं व फूल भी कम लगते हैं।**रोगजनक**:–यह रोग जैमिनी वायरस द्वारा होता है। सफेद मक्खी–बेमिशिया टेबेसाई नामक कीट इस रोग को फेलाने का कार्य करता है। रोगी पौधे से संक्रमित रस चूसकर स्वस्थ पौधे पर छोड़ता है। **रोकथाम**:– रोग के लक्षण दिखाई पड़ते ही मेटासिस्टॉक्स 0.04 प्रतिशत का छिड़काव करें तथा 15–20 दिन के अन्तराल पर दोहरावें। **किस्म** : आर.एस.–875 – लीफ कर्ल वायरस के प्रति अवरोधक है। गंगानगर से विकसित इस किस्म की उपज 20–21 क्विंटल है। देशी कपास आर.जी.–8

**मूंगफली**:–**टिक्का रोग** :– यह रोग सरकोस्पोरा एराकिडीकोला एवं स. परसोनेटा नामक कवक द्वारा होता है। इस रोग से फसल के पौधों पर गोल मटियाले रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। जिन खेतों में रोग का प्रकोप शुरु हो केवल वहीं पर मेन्कोजेब का 2 ग्राम/लीटर पानी का छिड़काव करें एवं 10–15 दिन के अन्तराल पर दोहरावें। **शिखर विगलन**:– (क्राउन रोट, कालर रोट)– यह रोग बुवाई के लगभग 20–30 दिन के अन्दर लगता है। यह रोग मृदा एंव बीजों में होता है। यह रोग मेक्रोफोमिना फेजियोलिना, एस्परजिलस नाइजर, ए. फलेवस तथा स्कलेरोशियम नामक फफूंद के कारण फैलता हैं। पौधा अचानक मुरझाकर मर जाता है। मुरझायें हुये पौधे को उखाड़ कर देखने पर तना जहां से भूमि से बाहर निकलता है उस जगह पर काला पड़ जाता है तथा जड़े भी काली पड़ जाती है। इस रोग के नियंत्रण के लिए बीजाई से पूर्व टेबुकोनाजोल 2 % DS 1.5 ग्राम या कार्बोक्सिन 35 % + थाइरम 2 ग्राम/किलोग्राम बीज कीद र से बीजोपचार करना चाहिए। बीजाई से पूर्व ट्राइकोडर्मा हरजिएनम 1 किलोग्राम 12 से 15 किलोग्राम गोबर की खाद के साथ मिलाकर भूमि उपचार करना चाहिए। रोग दिखाई पड़ते ही सिंचाई के साथ कार्बेडेजिम 2 ग्राम/लीटर पानी के हिसाब से पानी के साथ देवे अथवा कार्बेडेजिम दाना 3 किलो/बीघा के हिसाब से भूर कर फव्वारा चलावें।

**मूँग व मोठ** :–जून के अन्तिम सप्ताह में बोये जाने वाले बीजों को 3 ग्राम केप्टान प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करें। उन्नत किस्में आर.एम.ओ.–40, आर.एम.ओ.–257 की बुवाई ही करावें। ये किस्में विषाणु रोग रोधी है।

**ग्वार**:–**जड़ गलन रोग** – इस रोग के कारण पौधें की जड़े काली पड़ जाती है तथा पौध छोटी अवस्थ में ही मर जाता है। रोकथाम हेतु बुआई से पूर्व बीजों को केप्टान या टोपसीन एम–2 ग्राम एक किलो बीज की दर से उपचारित करें।

**अंगमारी एवं झूलसा रोग** की रोकथाम हेतु बुआई से पूर्व प्रति कि.ग्रा. बीज को 250 पी.पी.एम. एग्रीमाईसीन या स्टेप्टोसाइक्लिन के घोल में 2 धण्टे भिगोकर उपचारित करें। लक्षण दिखाई पड़ते ही 80 ग्राम स्ट्रेप्टोसाइक्लीन व एक किलो कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का 400 ली. पानी के हिसाब से घोल बनाकर छिड़काव करें।

**उन्नत किस्में**:– आर.जी.सी.–936, आर.जी.सी.–986

**तिल**:–बीजोपचार– बुआई से पूर्व बीज को 3 ग्राम थाइरम अथवा कैप्टान 3 ग्राम/किलो बीज की दर से उपचारित करें।**उन्नत किसमें**– आर.टी.–103, आर.टी.– 125, आर.टी.– 46।

**सब्जी**:–कुष्माण्डकुल की सब्जियॉ– कद्दू, लौकी, ककड़ी, टिण्डा, तोरई आदि प्रमुख है।

1. तुलासिता रोग– यह स्यूडोपेरेनोस्पोरा क्यूबेन्सीस नामक फूंद द्वारा फेलता है। रोकथाम हेतु मैन्कोजेब 2 ग्राम/लीटर पानी का छिड़काव करें।
2. झुलसा रोग – यह अल्टरनेरिया क्यूवेन्सीस नामक फफूंदी द्वारा फेलता हैं रोकथाम हेतु जाइनेब का 2 ग्राम/लीटर पानी का छिड़काव करें।
3. छाछिया रोग – यह रोग एरीसाइफी साइकोरेशियम नामक फफूंद द्वारा फेलता है। रोकथाम हेतु केराथियॅान एल.सी. नामक दवा का 1 मिली/लीटर पानी के घोल का छिड़काव करें।
4. विषाणु या मोजेक रोग– यह वाई.एम.वी. द्वारा फेलता है। एफिड एवं सफेद मक्खी इस रोग का संचरण करती है। रोग के कारण पत्तियों पर पीले धब्बे पड़ जाते है एवं पत्तियां सिकुड़ जाती है। फल आकार में टेढ़े–मेढ़े व कम संख्या में बनते है। रोकथाम हेतु मेलाथियान 1 मि.ली./लीटर पानी के घोल का छिड़काव करें।
5. जीवाणु पत्ती धब्बा रोग– यह रोग जेन्थोमोनास कम्पेरिट्रस कूकरबीटी नामक जीवाणु द्वारा फैलता है। रोकथाम हेतु लक्षण

दिखने पर स्ट्रेप्टोसाइक्लिन (100 पी.पी.एम.)/ग्राम और कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 25 ग्राम प्रति 10 लीटर पानी के हिसाब से घोल का छिड़काव करें।

**फलों के रोगः—कैंकर रोग—** जेन्थोमोनास नाम जीवाणु से फेलने वाले इस रोग से पत्तियां, टहनियों एवं फलों पर भूरे रंग के मध्य से खुरदरे व कार्कनुमा धब्बे बनते है। टहनियों एवं शाखाओं पर लम्बे घाव बनतें है। जिसमें टहनियां टूट जाती हैं।

**रोकथामः** रोपण से पूर्व कॉपर ऑक्सीक्लोराइड का 0.3 घोल का छिड़काव करें। लक्षण दिखाई देने पर स्ट्रेप्टोसाइक्लिन (200 पी.पी.एम.) 2 ग्राम एवं कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 25 ग्राम/10 लीटर पानी में घोल बनाकर 20 दिन के अन्तराल पर दो छिड़काव करें।

**कीट विज्ञानः—**

**नरमा कपासः—**फसल को सिफारिश के अनुसार विरलीकरण करें। यथासंभव हो, बीमार, कीटग्रसित व कमजोर पौधों को ही निकालें। पौधे से पौधे का फासला, सामान्य किस्मों में 30 से.मी. तथा संकर किस्मों में 60 से.मी. रखें ताकि पौधों को पर्याप्त वायु, प्रकाश, वृद्धि के लिए स्थान मिल सकें तथा ऐसी फसल में कीटों का प्रकोप भी कम होता है।खरपतवार, कीट एवं बीमारी ग्रसित पौधों एवं मेडो़ के पौधों को खेतो, खालों एवं सड़क के किनारों पर से निकालें व नष्ट करें। अन्यथा ये बीमारी व नाशी कीटों के प्रारम्भिक संरक्षण स्त्रोत बन जाते है।

**नाशी कीट प्रबन्ध** में निरिक्षण करना एक महत्वपूर्ण तथ्य है। नाशी कीटों की स्काउटिंग सप्ताह के अन्तराल से 10—12 पौधे प्रति बीघा लेकर करना चाहिए।

1. कपास व नरमा के खेत के चारों ओर दो लाइने मक्का, ज्वार बोने से कपास की फसल में मित्र कीटों की मात्रा में वृद्धि होती है।
2. जून माह में देशी कपास में चितकवरी व गुलाबी सूंडीयों का प्रकोप हो सकता है। फसल में प्रकोप हो गया हो तो निम्न में से किसी एक कीटनाशी का छिड़काव करें।

| | | |
|---|---|---|
| साइपरमेथ्रिन | 10 ई.सी. | 125 मि.ली. प्रति बीघा |
| साइपरमेथ्रिन | 25 ई.सी. | 50 मि.ली. प्रति बीघा |
| फेनवलरेट | 20 ई.सी. | 100 मि.ली. प्रति बीघा |
| डेकोमेथ्रिन | 2.8 ई.सी. | 100 मि.ली. प्रति बीघा |

ध्यान रहे इन कीटनाशियों का अगस्त माह बाद छिड़काव नही करना चहिए क्योंकि इसके पश्चात संश्लेषित पाइरेथ्राइड के प्रति प्रतिरोधकता अधिक पाई गई है। प्रतिरोधकता की समस्या को कम करने के लिए तिल के तेल को एक लीटर प्रति हैक्टर की दर से संश्लेषित पाइरेथ्राइड में मिला देना चाहिए।

| | | |
|---|---|---|
| मिथाइल डिमेटान | 25 ई.सी. | 250 मि.ली. प्रति बीघा |
| मेलाथियॉन | 50 ई.सी. | 300 मि.ली. प्रति बीघा |
| ऐसीफेट | 75 ई.सी. | 200 मि.ली. प्रति बीघा |
| डाइमेथोएट | 30 ई.सी. | 250 मि.ली. प्रति बीघा |

**मूंगफलीः—**खड़ी फसल में सफेद लट एवं दीमक का प्रकोप होने की दशा में सिंचाई के साथ क्लोरोपाइरिफोस एक लीटर या इमीडाकलोप्रिड 300 मि.ली प्रति बीघा की दर से प्रयोग करें। जहॉं मात्र दीमक का ही प्रकोप हो तो क्लोरोपाइरिफोस दवा का 600 मि.ली. प्रति बीघा रखें।

**भिण्डीः—**भिण्डी की फसल पर चितकवरी लट, सफेद मक्खी व हरा तेला का प्रकोप हो सकता है। इनकी रोकथाम के लिए मेलाथियोन 300 मि.ली. प्रति बीघा की दर से छिड़काव करें।

**लीफ माइनर व फल मक्खी** से इन सब्जियों को बचाने हेतु मेलाथियोन 300 मि.ली. प्रति बीघा की दर से छिड़काव करें।

**कुष्माण्डकुल की सब्जियॉंः—लीफ माइनर व फल मक्खी** से इन सब्जियों को बचाने हेतु या मेलाथियोन 300 मि.ली. प्रति बीघा की दर से छिड़काव करें।

**बैंगनः—**नर्सरी में पौध ही पत्तियों पर जालीदार पंख वाली बग का आक्रमण हो सकता है। अतः बचाव के लिए मेलाथियोन का घोल बनाकर छिड़काव करें।

**उद्यानिकीः—फलोद्यानः—** फल वृक्षों में गर्मी की प्रचण्डता को ध्यान में रखते हुए 6—7 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करें। नींबू वर्गीय फल वृक्षों में फूल ड्राप से फूलों के गिरने से बचाने के लिए 2 मि.ली. प्लेनोफिक्स एक लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

**सब्जी उत्पादनः—** सब्जियों की खड़ी फसलों में 3—5 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करें। शरदकालीन बैंगन, टमाटर व मिर्च की पौध तैयार करने के लिये नर्सरी में अच्छी तरह खुदाई करके सड़ी हुई गोबर की खाद या पत्ती की खाद मिलायें। बुआई से पहले बीजों को 2 ग्राम प्रति किलों के हिसाब से थाइरम या केप्टान से उपचारित करें। अगर भूमि में सूत्रकृमि (नेमिटोड) की आशंका हे तो 8—10 ग्राम कारबोफयूरान—3 जी (3 ग्राम प्रति वर्ग मीटर) के हिसाब से मिलाकर पौध तैयार करने के लिये 15—20 क्यारी तैयार करे।

कुष्माण्ड कुल में लौकी, करेला की बुवाई करें।

| क.स. | फसल का नाम | किस्म | बीज की मात्रा/है. |
|---|---|---|---|
| 1. | बैंगन | पूसा पर्पल लो ंग, पूसा पर्पल राउण्ड, पूसा कान्ति, अर्कानवनीत, पूसा हाईब्रिड—6 | 400—500 ग्राम |
| 2. | टमाटर | पूसा रुबी, अर्काविकास, हिसार अरुण, कर्नाटकहाईब्रिड 1,2 (संकर किस्में) | 400—500 ग्राम<br>150—200 ग्राम |
| 3. | मिर्च | मथानिया लोंग, पन्त—सी—1, पूसा ज्वाला, जवाहर | 1—1.5 कि.ग्रा. |

Printed and published by Dr. Deepali Dhawan on behalf of Nidesak Prasar Shiksha and Printed at M/s Kishan Enterprises, Magaram Colony, Outside Jassusar Gate, Bikaner and published at Swami Keshwanand Rajasthan Agricultural University, Bikaner, Editor : Prof. Rajesh Kumar Verma.